BIHAR SHODH SAMAAGAM, VOL. 1, ISSUE 3, p.p 5-8 (2023)

सामाजिकरण एवं सामाजिक नियंत्रण की एक समीक्षा
कृष्ण देव रॉय

परिचय :–

समाज केनिरंतरता को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि जन्म के साथ ही बच्चे को समाज की प्रतिभाओं तथा मूल्यों से अवगत कराया जाए अर्थात् सामाजिकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बच्चों में समाज के प्रति तथा समाज में पाए जाने वाले प्रतिमानोंके द्वारा उसके व्यक्तित्व का विकास होता हो। सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सामाजिकरण की प्रक्रिया एक सीखने की प्रक्रिया है जिसके द्वारा बचपन से ही एक व्यक्ति समाज के प्रतिमानों को अपनाने की कोशिश करता है। यह प्रक्रिया एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक संस्कृति के चीर स्थापित धरोहर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होते है। यह प्रक्रिया निरंतर समाज में स्थाई रूप से चलती रहती है। इस प्रक्रिया को परिभाषित करते हुए समाजशास्त्रियों ने अलग–अलग अपने विचार प्रकट किए हैं। हैरी एम. जोनसन का कहना है कि सामाजिकरण एक सीखने की प्रक्रिया है जिसके द्वारा सामाजिक भूमिका निभाने की क्षमता विकसित करता है। जोनसन का यह मत था कि सभी कुछ सीखने की प्रक्रिया सामाजिकरण नहीं है। समाज के बहुत सारे तत्व ऐसे तत्व हैं जिसे वह सीखता तो है परन्तु उन तत्वों के सीखने का कोई महत्व नहीं होता, इसलिए सीखने की प्रक्रिया में संस्कृति के द्वारा सीखे गए प्रतिमानों व मूल्यों का महत्वपूर्ण हाथ होता है। सैल्जिनिक ने सामाजिकरण की प्रक्रिया की परिभाषा देते हुए यह कहा था कि यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक व्यक्ति समूह के मूल्यों को सीखता है। सामाजिकरण की प्रक्रिया की परिभाषा देते हुए मैकाइबर का कहना था कि यह ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा समाज में रहकर एक व्यक्ति, एक दूसरे के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करता है। इस प्रकार वह समाज के अन्य सदस्यों के साथ गहरा सम्बन्ध विकसित करता है और एक–दूसरे के प्रति अपने कर्त्तव्यों को पहचानते हुए अपने व्यक्तित्व का विकास जटिल समाज के नियमों के अनुरूप करता है, इसलिए किम्बोल यंग ने समाजिकरण से अभिप्राय व्यक्ति के सामाजिक तथा सांस्कृतिक नियमों को सीखने से लगाया था। बर्जर तथा बर्जर ने समाजिकरण की एक सरल परिभाषा देते हुए इसे एक ऐसी प्रतिक्रिया बताया है जिससे व्यक्ति समाज का सदस्य बनने की क्षमता विकसित करता है।

बीज शब्द :– सीखना, परिवर्तन, मनोबल, नियम, परंपरा, सहयोग।

सामाजिकरण की आरम्भिक अवस्था है जो बचपन से ही शुरू हो जाती है। जन्म के साथ ही बच्चे को सांस लेना, भोजन करना तथा प्रतिकूल परिस्थितियों से बचने के लिए सुरक्षित रखना आवश्यक होता है। संभवतः इसलिए मौखिक आवश्यकताओं के लिए यह पूर्ण रूप से माँ पर निर्भर करता है। उसका सीधा संबंध परिवार के अन्य सदस्यों के बजाय सिर्फ माँ से होता है जो उसके मौखिक अवस्थाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। यह वह अवस्था है, जिसका वर्णन करते हुए फ्रायड ने इसे प्राथमिक पहचान की अवस्था कहा था। इस अवस्था में माँ और बच्चे का सीधा सम्पर्क स्थापित होता है। शारीरिक स्तर पर भी यह संबंध स्थापित होता है। सामाजिकरण की वह अवस्था है जब बच्चा एक से तीन साल के बीच होता है। इस अवस्था में रहकर एक बच्चा दो भूमिका को सीखता है–पहली भूमिका है, स्वयं की, और दूसरी भूमिका है जो अपने माँ के साथ रहकर निभाता है। बच्चा इन दोनों अवस्थाओं में माँ की देखरेख में रहता है, और उसे माँ का प्यार मिलता है, और इसके बदले वह भी माँ को प्यार देता है। इस अवस्था में उसकी दो प्रमुख भूमिकाएँ होती हैं–सबसे पहली भूमिका होती है समाज के सापेक्ष नियमों को सीखने की, जो सापेक्ष नियम होते हैं, वे सकारात्मक नियम होते हैं जिसे करने पर उसे माँ का प्यार मिलता है। इसके विपरीत नकारात्मक नियम भी होते हैं–जिसे निषेधात्मक नियम कहा जाता है–अर्थात् कुछ नकारात्मक नियम भी होते हैं, जिसे माँ के द्वारा दंडित किए जाने पर ही वह सीखता है। नकारात्मक नियमों के द्वारा उसे गलत काम करने के लिए माँ द्वारा दंड दिया जाता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि सामाजिकरण की प्रक्रिया में तनाव के तत्व भी होते हैं। बच्चों को शौच से संबंधित जानकारी माँ के द्वारा ही दी जाती है। इस प्रकार सामाजिकरण की प्रक्रिया के दौरान शौच से संबंधित

कृष्ण देव रॉय
शोद्यार्थी
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

व्यवहार को नियंत्रित किया जाता है। माँ की एक ओर अहम भूमिका समाजिकरण की प्रक्रिया में होती है जिसके द्वारा वह एक उपव्यवस्था से दूसरी बड़ी व्यवस्था का सदस्य बनता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि इन दोनों अवस्थाओं में सामाजिकरण की प्रक्रिया माँ के द्वारा सम्भव नहीं है।

समाजिकरण की विभिन्न अवस्थाओं के द्वारा बचपन से वयस्क होने तक वह समाज के नियमों को सीखता है। समाज के इन नियमों को सीखलाने में परिवार की एक अहम भूमिक होती है। इसलिए परिवार को एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में देखा जाता है। परिवार के साथ–साथ कई और भी साधन हैं जैसे–स्कूल, चर्च, विभिन्न समिति, क्लब आदि की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है परन्तु समाजिकरण की प्रतिक्रिया में, परिवार को एक महत्त्वपूर्ण माध्यम के रूप में देखा जा सकता है। वास्तव में, परिवार ही एक ऐसा समूह है, जहाँ एक बच्चे का अधिकाँश समय जन्म के बाद गुजरता है। इसलिए बचपन से ही वह परिवार के सदस्य के रूप में समाजिकरण की प्रतिक्रिया के द्वारा समाज के नियमों को अपनाना शुरू कर देता है। चूंकि परिवार को एक प्राथमिक समूह कहा जाता है इसलिए परिवार के सदस्यों द्वारा जो नियम उसे सिखाए जाते हैं, वह सामाजिक रूप से तथा नैतिक, दोनों स्तर पर अधिकांश परिस्थितियों में सही होते हैं, बहुत से बच्चे निर्धन परिवार में जन्म लेते हैं जिन्हें स्कूल में जाकर शिक्षा प्राप्त करने का मौका नहीं मिल पाता और ऐसे बच्चों के लिए परिवार ही स्कूल बन जाता है परिवार में रहकर एक बच्चा न केवल अपने परिवार के सदस्यों की पहचान करता है बल्कि परिवार के वयस्क सदस्यों के साथ रहकर वह समाज के नियमों को भी अच्छी तरह समझने लगता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि समाजिकरण की प्रक्रिया में परिवार एक प्राथमिक पाठशाला है। भाषा का ज्ञान उसे परिवार में मिलता है, अपने माता–पिता के साथ रहकर वह न केवल बड़ा होता है बल्कि बोलना भी सीखता है। इस प्रकार समाज के बड़े–बुजुर्गों को किस सम्बोधन से बुलाना है, किस प्रकार उनका अभिवादन करना है–इन सभी बातों को परिवार में रहकर ही वह सीखता है। समाज के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि समाज में जिस प्रकार व्यक्ति एक दूसरे से जुड़े होते हैं, उसमें प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक अलग स्थान होता है। डॉक्टर, शिक्षक, व्यापारी, मेकेनिक, इंजिनियर, मजदूर, पुलिस, नर्स, पायलट, ड्राइवर। ये सभी किसी पेशे से जुड़े ऐसे व्यक्ति हैं जिनके पेशे अलग–अलग हैं और उन पेशों के कारण उनकी सामाजिक स्थिति भी भिन्न है। इसलिए यह कहा जाता है कि सामाजिक स्तर पर भिन्नता किसी भी समाज की एक विशिष्ट पहचान है। प्रत्येक समाज में यह विभिन्नता पायी जाती है और समाज शास्त्रियों ने इस विभिन्न समाजिक कार्यों से जुड़े व्यक्तियों का अध्ययन अपने विशिष्ट अवधारणाओं की मदद से किया है। किसी व्यक्ति का ऊँचा व नीचा माना जाना उस समाज के प्रचलित नियमों के आधार पर होता है। सभी समाज के नियम यों तो अलग–अलग होते हैं परंतु उसके बावजूद भी समाज में व्यक्ति को ऊँचा व नीचा स्थान प्रदान करने के कुछ सैद्धान्तिक आधार हैं जिन सैद्धान्तिक आधार को ध्यान में रखकर समाजशास्त्रा में सामाजिक स्वरूप का अध्ययन किया जाता है। जहाँ तक सामाजिक स्तरीकरण का प्रश्न है इसे परिभाषित करते हुए बर्जर तथा बर्जर का मानना था कि सामाजिक स्तरीकरण से समाज में व्यक्ति को एक दूसरे से भिन्न पहचान होती है जो सामाजिक वर्गीकरण के सिद्धान्त पर उस समाज में टिका होता है। प्रत्येक व्यक्ति को उसके नाम के आधार पर एक श्रेणी में रखा जाता है और इस प्रकार व्यक्तियों को श्रेणीबद्ध कर अध्ययन करने की प्रक्रिया ही सामाजिक स्तरीकरण का अध्ययन करना है। इस प्रकार सामाजिक स्तरीकरण लोगों को श्रेणीबद्ध करने की प्रक्रिया है। जो व्यक्ति विभिन्न श्रेणी में बँटे होते हैं उन्हें स्तर कहते है। किंगस्ले डेविस ने कहा है कि जब हम जाति, वर्ग तथा सामाजिक स्तरीकरण की बात सोंचते हैं तो हमारे मस्तिष्क में उन समूहों का ध्यान आता है जिसके सदस्य समाज में अपना एक स्थान रखते हैं। उसके आधार पर उन्हें कुछ प्रतिष्ठा मिली होती है। इसके आधार पर एक समूह की स्थिति दूसरे समूह से वैधानिक दृष्टि से अलग मानी जाती है वह सामाजिक स्तरीकरण का आधार बन जाती है।

जब हम वर्ग पर आधारित समाज की बात करते हैं तो यह कहा जा सकता है कि वर्ग–विहिन समाज की कल्पना नही की जा सकती है। यहकहा जाता है कि जनजातिय समाज में कोई वर्ग नह° होता। उनका सामाजिक संगठन उम्र, लिंग तथा नातेदारी पर आधारितहोता है परंतु वह समाज भी जब जटिल हो जाता है और कुछ लोग संपत्ति अधिक कमाकर अपना स्थान ऊँचा बना लेते हैं तो उस समाज में भी स्तरीकरण की प्रणाली दृष्टिगोचर होने लगती है। इसलिए टाम बाटमोर का कहना था समाज में वर्ग तथा श्रेणी का बँटवारा सत्ता और प्रतिष्ठा के आधार पर क्रमबद्ध स्वरूप किसी भी समाज की सार्वभौमिक

कारण है जिसने सभी सामाजिक वैज्ञानिकों को प्रभावित किया है। पेंगुयिन शब्दकोष में निकोलस अबरक्रांबी के सामाजिक स्तरीकरण की परिभाषा देते हुए कहा है कि जब लोगों को असमानता के कुछ पहलुओं को ध्यान में रखकर श्रेणीबद्ध किया जाता है तो इस प्रकार की सामाजिक विभिन्नता को सामाजिक स्तरीकरण कहा जाता है। रीचर्ड टी मौरिम का कहना था कि हम सभी समाज में पैदा होते हैं, जहाँ पर लोगों को ऊपर व नीचे की श्रेणी में उनके ऊँचे वा निम्न स्थान पर रखा जाता है। इसे समाज के सभी लोग ऊँचा व नीचा मानते हैं तथा स्तरीकरण की प्रणाली पनपती है। उदाहरण के लिए यह कहा जा सकता है कि जन्म से ही श्वेत वर्ण के लोगों को ऊँचा माना जाता है अपेक्षाकृत उनके जो अश्वेत होते हैं। इस प्रकार कुछ समाज में वर्ण वा रंग के आधार पर एक व्यक्ति को एक खास स्थान मिला होता है। जब उस स्थान को सामाजिक मान्यता के द्वारा स्थायी मापदंड मानकर ऊँचा तथा निम्न स्थान दिया जाए तो स्तरीकरण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सामाजिक स्तरीकरण की प्रक्रिया कोई अमूर्त अवधारणा नही है वरन् यह एक वास्तविक सामाजिक स्थिति है जिसके कुछ ऐसे लक्षण हैं जो एक व्यक्ति, समूह, समाज, संस्कृति के लोगों को दूसरे व्यक्ति, समूह, समाज तथा संस्कृति से अलग कर उन्हें एक ऊँची तथा निम्न श्रेणी सोपान के अंतर्गत सामाजिक स्थान देते हैं।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि समाजशास्त्रियों में इस बात को लेकर मतभेद हो सकता है कि स्तरीकरण का अध्ययन कैसे किया जाए? परंतु सामाजिक स्तरीकरण एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है, इस बात को सभी स्वीकार करते हैं और इसे सभी मानते हैं कि प्रत्येक समाज में एक व्यक्ति या समूह को ऊँचा व नीचा स्थान देकर उसकी स्थिति का मुल्यांकन अवश्य किया जाता है। सभी समाज स्तरीकृत समाज हैं। परंतु ये सभी स्तरीकृत समाज एक दूसरे से काफी अलग हो सकते हैं क्योंकि उन सभी में स्तरीकरण का मापदंड अलग हो सकता है। सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था की विभिन्न विशेषताओं का वर्णन किया जा सकता है परंतु प्रत्येक समाज में ये विशेषताएंविभिन्न प्रकार से कार्य करते हैं और इसके कारण उनकी क्रियात्मक क्षमताओं का अध्ययन भी उन समाजों की विशिष्ट परिस्थिति के संदर्भ में ही करना उचित होगा। उनकी विशेषताओं में सामाजिक वर्ग, प्रजाति, जेंडर, जन्म तथा उम्र को आधार बनाकर अध्ययन किया गया है। ये सभी तत्व अपना खास महत्व उस समाज में रखतें हैं। उदाहरण के लिए यह कहा जा सकता है कि भारतीय समाज में जन्म से ही जाति को कुछ विशिष्ट स्थान मिल जाते हैं। अगर एक व्यक्ति का जन्म ब्राह्मण परिवार में होता है तो उसका सामाजिक स्थान ऊँचा हो जाता है। उसी प्रकार अगर उसका जन्म निम्न जाति के हरिजन परिवार में होता है तो उसका स्थान नीचा माना जाता है। इसी प्रकार स्त्राी का स्थान पुरूषों के अपेक्षाकृत निम्न स्तर का माना जाता है। जबकि जनजातिय समाज में उम्र के अनुसार लोगों को उच्च स्थान मिले होते हैं और वहाँ स्त्राी का निम्न स्थान नह° होता है। इसलिए एक तत्व अगर किसी समाज में स्तरीकरण के मुख्य आधार बन जाते हैं तो वही तत्व दूसरे समाज में ज्यादा महत्व नही रखते। परंतु इन सब के बावजूद भी सामाजिक स्तरीकरण के कुछ ऐसे आधारभूत तत्व हैं जिन्हें संरचनात्मक आधार कहा जा सकता है।

मूल्यांकन :–

उपयुर्क्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता हैं कि समाजिकरण एक ऐसी अवस्था हैं जिसमें कई तत्वों का समायोजन होता है, तब जाकर यह एक रूप प्रदान करता है। सामाजिक गतिशीलता से अभिप्राय व्यक्ति का एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचने से होता है। जब एक स्थान से व्यक्ति दूसरे स्थान को जाता है तो उसे हम साधारणतया आम बोल चाल की भाषा में गतिशील होने की क्रिया मानते हैं। परंतु इस प्रकार की गतिशीलता का कोई महत्व समाजशास्त्रिय अध्ययन में नही है। समाजशास्त्रिय अध्ययन में गतिशीलता से तात्पर्य एक सामाजिक व्यवस्था में एक स्थिति से दूसरे स्थिति को पा लेने से है जिसके फलस्वरूप इस स्तरीकृत समाजिक व्यवस्था में गतिशील व्यक्ति का स्थान उँचा उठता है व नीचे चला जाता है। एक स्थान से उपर उठकर दूसरे स्थान को प्राप्त कर लेना जो उससे उँचा है निस्संदेह गतिशीलता है। सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि समाजशास्त्रा में सामाजिक गतिशीलता का अभिप्राय है किसी व्यक्ति, समूह या श्रेणी की प्रतिष्ठा में परिवर्त्तन।

संदर्भ :–

वीना पुनाचा, 'अण्डरस्टैण्डिंग वीमेन्स स्टडीज', एस0एन0डी0टी0 वीमेन्स यूनिवर्सिटी, मुम्बई, 1999

शुक्ला, मनीषा 'ऋग्वेद संहिता में स्त्री, एक अध्ययन' महिला अध्ययन एवं विकास केन्द्र, काशी, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

कृष्ण देव रॉय
शोद्यार्थी
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

लारेन्स, डॉ0 जास्मिन 'महिला श्रमिक : सामाजिक स्थिति एवं समस्याएँ' आदित्य पब्लिशर्स, मध्यप्रदेश।
राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना वर्ष 2000–2016, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली।
सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुसंधान, डॉ0 डी0एन0 श्रीवास्तव, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
डॉ0 हेमलता स्वरूप एवं डॉ0 शील मिश्रा 'महिलाओं के भूमिका सम्बन्धी सिद्धान्त', साहित्य प्रकाशन, कानपुर
चौधरी, मैत्रेयी 'इण्डियन वीमेन्स मूवमेन्ट, रिफार्म एण्ड रिवाइवल' नई दिल्ली, रैडिएण्ट पब्लिकेशन्स